28.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- हिंदी के प्रमुख मार्क्सवादी आलोचक डॉ.रामविलास शर्मा के आलोचना-कर्म का विस्तार से परिचय पा सकेंगे; तथा
- हिंदी आलोचना को डॉ.शर्मा के प्रदेय के विषय में गहन जानकारी दे सकेंगे।

28.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना का अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना के शिखर-पुरुष डॉ.रामविलास शर्मा पर केंद्रित है। उन्होंने हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना में 'हिंदी जाति', 'हिंदी जाति की सांस्कृतिक चेतना', 'भाषा-समाज-संस्कृति-साहित्य', 'हिंदी नवजागरण' जैसी अनेक नवीन अवधारणाओं पर नया चिंतन प्रस्तुत किया है। कहना चाहिए कि वे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद हिंदी के सबसे बड़े जातीय आलोचक हैं। उन्होंने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नाम से कोई पुस्तक चाहे न लिखी हो पर अपनी अनेक पुस्तकों के माध्यम से हमारी परंपरा के मूल्यांकन, साहित्य-समाज और इतिहास की प्रगतिशील परंपरा के भाष्य द्वारा जो हमें दिया है, वह अपने आप में हिंदी साहित्य का नया इतिहास है। डॉ. शर्मा की अनेक धारणाओं पर मार्क्सवादी और गैर-मार्क्सवादी, दोनों तरह के आलोचकों में गंभीर विमर्श हुआ है। हिंदी आलोचना में अपनी नवीन स्थापनाओं के कारण वे लगभग छह दशकों तक विवादों के केंद्र में रहे हैं।

28.2 आलोचक व्यक्तित्व का निर्माण

डॉ.रामविलास शर्मा के आलोचक-व्यक्तित्व का निर्माण बीसवीं शताब्दी के भारतीय स्वाधीनता संग्राम की मुक्ति चेतना ने किया है। एक खास अर्थ में वे बड़े देशभक्त चिंतक और आलोचक हैं। एक ऐसे देशभक्त चिंतक जिन्होंने मार्क्सवाद के वैचारिक-सैद्धांतिक आधार को ग्रहण करने के बाद साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी, पूँजीवादी, फासीवादी, नस्लवादी गुलामी की मानसिकता से मुक्ति दिलाने के लिए कड़ा

Scanned by CamScanner

के बाद का यूरोप, यूनानी-रोमी संस्कृति से प्रभावित होकर नवजागरण से मार्क्सवाद की ओर पहुँचा। इस मुद्दे पर प्रकाश डालने के लिए डॉ.शर्मा ने किताब लिखी - 'मार्क्स और भारत'। मार्क्स कहते थे - अंग्रेज़ों की भारत पर विजय 'सभ्यता पर असभ्यता की विजय' है। इन बातों पर गहराई से विचार करने के लिए सामंतवाद क्या है? भारतीय सामंतवाद की विशेषताएँ क्या हैं? पूँजीवाद क्या है?व्यापारिक पूँजीवाद कैसे आता है? व्यापारिक पूँजीवाद की विशेषताएँ क्या हैं? औद्योगिक पूँजीवाद कैसे आता है? औद्योगिक पूँजीवाद तथा महाजनी पूँजीवाद में क्या फर्क है? महाजनी पूँजीवाद के लिए अमरीका, जापान, जर्मनी, इंगलैंड, फ्रांस के पूँजीवाद को समझना आवश्यक है। भारत में विदेशी पूँजी आती है तो विदेशी संस्कृति भी आती है - यह सीधा गणित समझना चाहिए। इसी बात को समझने के लिए डॉ. शर्मा ने किताब लिखी - 'भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद'। डॉ.शर्मा की मार्क्सवाद से संबंधित पुस्तकें एक-सूत्र में जुड़ी हुई हैं और वह सूत्र है - भारतीय इतिहास और समाज व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में मार्क्सवाद की व्याख्या। वे कहते हैं कि 'इजारेदार पूँजीवाद की शक्ति का स्रोत है मुनाफाखोरी। संसार के कच्चे माल के स्रोतों पर वह अधिकार करता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और निगम अपने माल की बिक्री के लिए नव-साम्राज्यवाद स्थापित करते हैं।'

सफल या असफल क्रांति कैसी भी हो - असर पड़ता है। फ्रांसीसी राज्य-क्रांति का असर अंग्रेज़ी-साहित्य पर बहुत गहरा पड़ा। इसी तरह, 1857 की स्वाधीनता-भावना से भरी मुक्ति-क्रांति का असर हिंदी साहित्य और भारतीय साहित्य पर अनेक रूपों में पड़ा। 'आस्था और सौंदर्य' पुस्तक के नवीन संस्करण में डॉ. शर्मा ने एक लंबा लेख लिखा - 'फ्रांसीसी राज्य-क्रांति और मानव-संस्कृति के विकास की समस्या'।

डॉ. शर्मा ने मार्क्सवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने के लिए 'पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद', 'भारतीय नवजागरण और यूरोप' तथा 'इतिहास दर्शन' जैसी पुस्तकें लिखीं हैं। मार्क्स की दार्शनिक पृष्ठभूमि में यूनानी दर्शन, फ्रांसीसी-दर्शन और हीगल का दर्शन है। मार्क्स का पूरा समाज-संबंधी चिंतन इन दर्शनों से प्रभावित हुआ। भारत की अपनी दार्शनिक परंपरा है - मुख्यतः यथार्थवादी दार्शनिक धारा। यहाँ भी द्वंद्ववाद का विकास हुआ। भारतीय दार्शनिक परंपरा ने भारतीय रचनाकारों को भवभूति, कालिदास, तुलसी, जायसी, जयशंकर प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, मुक्तिबोध, अज्ञेय को यथार्थवाद की एक नई पहचान दी। इस पहचान को पहली बार डॉ.शर्मा ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हिंदी आलोचना में प्रस्तुत किया।

28.5 भाषा और समाज : मार्क्सवादी चिंतन का आधार

डॉ.रामविलास शर्मा के आलोचक का ध्यान कम्युनिस्ट पार्टी और प्रगतिशील लेखक संघ में काम करते हुए भाषा संबंधी समस्याओं पर गया। इन समस्याओं से प्रेरित होकर उन्होंने पुस्तक लिखी - 'भाषा और समाज'। संकेत-संप्रेषण में मानव सभी जीवों में आगे है, उसके संकेत-संप्रेषण का प्रधान माध्यम है - ध्वनियों द्वारा संकेत। पशु-पक्षी भी ध्वनियों का उपयोग करते हैं लेकिन इस क्षेत्र में मनुष्य बहुत आगे बढ़ा हुआ है। मानव के पास न केवल विकसित मस्तिष्क है, बल्कि विकसित स्वर-यंत्र भी है जिससे वह अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक ध्वनियाँ निकालने की क्षमता रखता है। अपनी बुनियादी ध्वनियों को वह शब्द का रूप दे देता है। इसका मतलब है कि भाषाओं का जन्म प्राकृतिक ध्वनियों के अनुकरण से नहीं हुआ। उसकी बुनियाद में ध्वनियों में भेद करने की शक्ति काम करती है। इस शक्ति-विकास में मानव को लाखों वर्ष लगे हैं - मानव समूह ने क्रमशः समाज का रूप लिया और सामाजिक गठन बराबर बदलते हैं। नतीजा होता है - प्रत्येक समाज का अपना गठन, अपनी विशेषताएँ। भाषा एक छोर पर रूढ़ि-युक्त तथा दूसरे छोर पर रूढ़ि-मुक्त परिवर्तनशील स्वभाव रखती है। उसमें भी ध्वनि-प्रवृत्ति भाषा का टिकाऊ पक्ष होता है। डॉ.शर्मा ने इसीलिए पुस्तक में एक अध्याय दिया - भाषा की ध्वनि-प्रकृति। शब्दों का संबंध जब वस्तुओं और परिस्थितियों के साथ निश्चित हो जाता है तब शब्दों से वाक्य बनते हैं। यह भाषा की 'भाव प्रकृति' है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में नस्ल-सिद्धांत का बार-बार जिक्र किया जाता है। जबकि नस्लों के आधार पर भाषा का गठन नहीं होता। कबीले स्त्रियों को उड़ाकर ले जाते हैं - नस्ल की शुद्धता खत्म हो जाती है। अतः नस्ल टिकाऊ नहीं है, भाषा की ध्वनि-प्रकृति टिकाऊ होती है। डॉ.शर्मा 'आदि इंडो यूरोपियन' भाषा-परिवारों के विस्तृत अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'भाषा परिवारों के निर्माण का कारण सामाजिक विकास है, आदि भाषा का अस्तित्व नहीं।' भारत तथा भारत से बाहर यह माना जाता रहा कि आर्य बाहर से आए थे। वे 'इंडो-ईरानियन' शाखा से जुड़े थे। वैदिक भाषा से लौकिक भाषा का विकास, फिर लौकिक संस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से अपभ्रंश, अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाएँ। इस तरह का एक ग्राफ बनाया जाता है, इस ग्राफ को डॉ. शर्मा अवैज्ञानिक

Scanned by CamScanner

संघर्ष किया। भारतीय साहित्य और विश्व-साहित्य की लोकजागरणवादी चेतना को ग्रहण करते हुए रीतिवादी परंपरा का विरोध किया। किसान-मज़दूर एका कायम करके ही भारतीय जनता की स्थिति को बदला जा सकता है और यह काम वामपंथी आंदोलन ही कर सकता है - इस विचार पर वे अटल विश्वास करते रहे।

डॉ. रामविलास शर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिला स्थित ऊँच गाँव में 10 अक्तूबर 1912 को गरीब किसान परिवार में हुआ तथा बचपन गाँव के खेत-खलिहानों में बीता। अवध का पश्चिमी भाग बैसवाड़ा - यहाँ घर और गाँव के दृश्य उनके हृदय में स्थायी अनुभव बने। उनके पास असल पूँजी यही है। बाबा, ददुआ, बड़े भाई, अवध की लोक-संस्कृति उनके व्यक्तित्व के निर्माण काल में रचे-बसे रहे। शिक्षा के लिए झाँसी गए और क्रांतिकारी विचारों की मानसिकता से सम्पन्न हुए। प्रगतिशील लेखक संघ, मार्क्सवादी आंदोलन, 'जोशी-रणदिवे-डांगे' तीनों को नज़दीक से देखा, उनके साथ कम्युनिस्ट पार्टी तथा पत्र-पत्रिकाओं में संकीर्णतावादी-सम्प्रदायवादी शक्तियों का विरोध किया। लखनऊ विश्वविद्यालय से 1934 में अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. और 1940 में पी-एच.डी. की। 1938 तक लखनऊ विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी के प्राध्यापक रहे। उसके बाद 1943 में आगरा आ गए। 1971 तक बलवंत राजपूत कॉलेज आगरा में अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष पद पर काम किया। 1971-74 में आगरा के कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी हिंदी विद्यापीठ के निदेशक रहे। फिर 1981 में दिल्ली आ गए और शरीरांत (30 मई, 2000) तक यहीं रहे। उन्हें 'निराला की साहित्य-साधना' पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला। 1988 में शलाका सम्मान, 1990 में भारत-भारती पुरस्कार तथा 1991 में व्यास सम्मान से सम्मानित हुए। उन्होंने इन सभी पुरस्कारों की चार लाख से अधिक धनराशि को देश में साक्षरता के प्रसार के लिए दान दे दिया। उनका पूरा जीवन-संघर्ष 'अपनी धरती अपने लोग' (तीन भागों में) प्रकाशित उनकी आत्मकथा से समझा जा सकता है। उनकी मृत्यु 30 मई, 2000 को दिल्ली में हुई।

डॉ.रामविलास शर्मा ने आरंभ में कविताएँ लिखीं। अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' (1943) में उन्हें स्थान मिला। उनके दो स्वतंत्र कविता संग्रह 'रूपतरंग' (1956) और 'सदियों के सोए जाग उठे' (1988) नाम से सामने आए। उपन्यास, नाटक, अभिनय, संगीत की ओर भी हाथ बढ़ाया। लेकिन अंततः वे पूरे मन से आलोचना-कर्म के प्रति समर्पित हो गए। निरालाजी की जीवनी लिखी - अद्भुत सर्जनात्मक जीवनी। शुरुआत में विवेकानंद के व्याख्यानों के अनुवाद किए - 'भक्ति और वेदांत' (1933), 'कर्मयोग' (1934), 'राजयोग' (1934)। 1936 में 'चार दिन' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। फिर 'सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास' बुल्गारियाई कवि वात्सारोव की कविताओं का अनुवाद किया। मार्क्स के 'दास कैपिटल' के दूसरे खण्ड का 'पूँजी' नाम से अनुवाद (1974)।

28.3 प्रमुख पुस्तकें

आलोचनात्मक पुस्तकें : 'प्रेमचंद' (1941), 'भारतेंदु युग' (1943), 'भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा' (भारतेंदु युग का परिवर्द्धित संस्करण) (1975), 'प्रगति और परंपरा' (1949), 'संस्कृति और साहित्य' (1948), 'निराला' (1947), 'प्रेमचंद और उनका युग'' (1952), 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' (1953), 'भाषा, साहित्य और संस्कृति' (1954), 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ' (1954), 'लोक जीवन और साहित्य ' (1955) 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना' (1955), 'राष्ट्रभाषा की समस्या' (1956), 'मानव सभ्यता का विकास' (1956), 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य' (1956), 'भाषा और समाज' (1956), 'सन सत्तावन की राज क्रांति' (1957), 'निराला की साहित्य-साधना' (1967), 'साहित्य : स्थायी मूल्य और मूल्यांकन' (1968), 'निराला की साहित्य-साधना' (खंड-दो, 1972), 'निराला की साहित्य-साधना' (खंड-तीन, 1976), 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' (1977), 'नयी कविता और अस्तित्ववाद' (1978), 'भारत की भाषा समस्या' (1978), 'आर्य और द्रविड़ भाषा परिवारों का संबंध' (1979), 'प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी' (तीन खंड - 1979, 1980, 1981, 1982), 'परंपरा का मूल्यांकन' (1981), 'भाषा, युग बोध और कविता' (1981), 'कथा विवेचना और गद्य शिल्प' (1982), 'भारत में अंग्रेज़ी राज और मार्क्सवाद' (खंड एक - 1982, खंड दो - 1994), 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य' (1984), 'भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ' (1984), 'लोकजागरण और हिंदी साहित्य' (1985), 'हिंदी जाति का साहित्य' (1986), 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल' (1986), 'आस्था और सौंदर्य' (नया संस्करण) (1990), 'भारतीय इतिहास की समस्याएँ' (1990), 'स्वाधीनता संग्राम : बदलते परिप्रेक्ष्य' (1992), 'भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद' (1992), 'पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद' (1993), 'भारतीय नवजागरण और यूरोप ' (1993), 'इतिहास दर्शन' (1995),

Scanned by CamScanner

'भारतीय साहित्य की भूमिका', 'भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश' (दो खंड - 1999), 'गांधी, आम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ' (2000)।

अंग्रेज़ी में पुस्तकें : 'एन इंट्रोडक्शन टु इंगलिश रोमाण्टिक पोयट्री' (1946), 'स्टडीज़ : नाइन्टीन्थ सेंचुरी इंगलिश पोयट्री' (1960), 'एसेज ऑन शेक्सपीरियन ट्रेजेडी' (1970)।

आत्मकथा : 'अपनी धरती अपने लोग' (तीन खंड - (1) मुँडेर पर सूरज - 1996, (2) देर सबेर - 1996, (3) आपस की बातें - 1996)।

अन्य पुस्तकें : 'बड़े भाई' (1986), 'घर की बात' (1983), 'पंचरत्न' (1980)।

28.4 मार्क्सवाद की विचारधारा का नए ढंग से उपयोग

डॉ.रामविलास शर्मा ने मार्क्सवाद की विचारधारा का भारतीय समाज-संदर्भों को समझते हुए उपयोग किया। इस क्षेत्र में वे लकीर के फकीर नहीं रहे। मार्क्सवाद की लीक को तोड़ने पर बहुत से मार्क्सवादी नाराज़ हुए और उन्हें 'हिंदू पुनरुत्थानवाद' का समर्थक आलोचक तक कहा गया। हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना में निर्ममता का दूसरा नाम ही रामविलास शर्मा है। ध्वंसात्मक आलोचना में उनका मुकाबला नहीं। लेकिन रचनाकार की बारीक से बारीक अर्थ-ध्वनि पकड़ने में उनका कोई जवाब नहीं। 'निराला की साहित्य-साधना' हिंदी आलोचना की बेजोड़ उपलब्धि है - शायद ही भारतीय आलोचना में किसी एक कवि पर इतना महत्वपूर्ण कार्य किसी आलोचक ने किया हो और एकदम नए साहित्य-प्रतिमानों के साथ।

दरअसल, डॉ.रामविलास शर्मा का काफी लेखन ऐसा है जिसका मार्क्सवाद और इतिहास से सीधा संबंध है। लेकिन इस लेखन की विशेषता यह है कि वे मार्क्सवाद को ज्यादा आलोचनात्मक निगाह से देखते-परखते हैं। सन 1950 के आसपास कम्युनिस्ट पार्टी के अंदर विचारधारात्मक संघर्ष आरंभ हुआ। प्रगतिशील लेखकों की बहस को बढ़ाने के लिए डॉ. शर्मा ने दो पुस्तकें लिखीं - (1) 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ'; और (2) 'मानव-सभ्यता का विकास'। बहस का प्रमुख मुद्दा था - अंग्रेज़ों के भारत आने के समय यहाँ के आर्थिक विकास की स्थिति क्या थी? अंग्रेज़ों ने पुराने व्यापार के ढाँचे को तोड़कर नए व्यापार-केंद्र स्थापित किए। मुनाफाखोरी के ढंग में बदलाव आया। किसान के माल की लूट मच गई। आखिरकार साम्राज्यवादी सत्ता को पछाड़ने के लिए 1857 में गदर हुआ। जो लोग गदर को स्वाधीनता-संग्रम नहीं मानते थे, वे अक्सर मार्क्स का हवाला देते थे। उनका कहना था कि मार्क्स ने लिखा है, भारत ग्राम-समाजों का देश है। इस पुरानी समाज-व्यवस्था को तोड़ने का श्रेय अंग्रेज़ों को है। इस तरह वे भारत में अंग्रेज़ी की प्रगतिशील भूमिका को प्रमाणित करते थे। डॉ.शर्मा ने तर्कों से यह सिद्ध किया कि यह धारणा सही नहीं है। इसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए उन्होंने 'भारत में अंग्रेज़ी राज और मार्क्सवाद' तथा 'मार्क्स और पिछड़े हुए समाज' जैसी पुस्तकें लिखीं। मार्क्स, भारत में अंग्रेज़ों का राज न चाहते थे - वे कहते थे कि भारत में अंग्रेजी राज कायम होने से भारत का स्वाभाविक विकास रुक गया।

भारत और यूरोप के इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है - सामंतवाद। सामंत बड़े-बड़े ज़मींदार और राजा होते हैं, जनता का शोषण करते हैं।'मार्क्स के लिए सामंतवाद उत्पादन की एक पद्धति थी।' मार्क्स सोचते थे कि सर्वहारा क्रांति इंगलैंड, जर्मनी में होगी। लेकिन वैसा हुआ नहीं। क्रांति क्यों नहीं हुई? डॉ.शर्मा का विचार है कि इंगलैंड के चतुर पूँजीपतियों ने मुनाफे का कुछ हिस्सा मज़दूरों को बाँटना शुरू कर दिया। मज़दूरों की क्रांतिकारिता को भ्रष्ट किया। आयरलैंड में सत्ताधारी भूस्वामी-वर्ग था, क्रांति नहीं हो सकती थी। मार्क्स की आरंभिक धारणाओं को लेकर जो सिद्धांत प्रचारित हुआ उसे 'त्रोत्स्कीवाद' नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार एशिया का विकास यूरोप के विकास से बिल्कुल अलग ढंग से हुआ। मार्क्स ने उत्पादन की 'एशियाई पद्धति' का हवाला दिया और कहा कि आदिम साम्यवादी समाज एशिया में है। उत्पादन की खास एशियाई पद्धति है और एशिया के लोग उससे बाहर नहीं निकलते। भारत में जाति-प्रथा का ज़ोर है। इसलिए यूरोप की तरह के वर्गों का निर्माण भारत में नहीं हुआ। न उस ढंग का सामंतवाद-पूँजीवाद आया। इस बात को स्पष्ट करने के लिए डॉ. शर्मा ने पुस्तक लिखी -' 'मार्क्स त्रोत्स्की और एशियाई समाज'। उन्होंने कहा कि एशियाई उत्पादन पद्धति को गलत ढंग से पेश किया गया। कारण, त्रोत्स्कीवादी प्रचारित साम्राज्यवादियों के संरक्षण में थे और कहते थे कि एशिया की आर्थिक जड़ता को पश्चिमी देशों का संपर्क ही तोड़ सकता है।

डॉ. शर्मा मानते हैं कि 'संस्कृति' का गहरा रिश्ता अर्थ-तंत्र से है। मार्क्स पर यूनानी-रोमन संस्कृति का प्रभाव था। सोलहवीं शताब्दी के इंगलैंड और यूनान में समानता थी - व्यापारिक पूँजीवाद। अंधकार युग

Scanned by CamScanner

मानते हैं और किशोरीदास वाजपेयी के 'हिंदी शब्दानुशासन' की प्रशंसा करते हैं। प्रगतिशील लेखक संघ में काम करते हुए डॉ.शर्मा ने हिंदी-प्रदेश में हिंदी के अलावा बहुत-सी जनपदीय भाषाओं के व्यवहार पर ध्यान केंद्रित किया। इससे ही किसान-संवेदना तथा किसान-आंदोलन (अवध के बाबा रामचन्द्र के किसान आंदोलन) को समझने की कोशिश की। किसान आंदोलन में प्रचार की भाषा में कविता-नाटक लिखे जाते हैं, गद्य बहुत कम लिखा जाता है। ध्यान देने की बात है कि जनपदीय भाषाएँ हिंदी से स्वतंत्र जातियों की भाषाएँ नहीं हैं। ब्रजभाषा तथा अवधी अपने क्षेत्र से बाहर भी फैलती रहीं तथा जनपदीय एकता कायम करती रहीं। इसी हिंदी प्रदेश में हिंदू-मुसलमान रहे। किंतु यह कहना गलत है कि हिंदी हिंदुओं की भाषा और उर्दू मुसलमानों की। मीर, गालिब चाहे जितने फारसी के शब्दों का इस्तेमाल कविता के सृजन में करें, उनके क्रियापद-सर्वनाम सब हिंदी से आते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उर्दू, हिंदी की ही एक शैली है। अवध के गाँव का किसान चाहे हिंदू हो या मुसलमान, अवधी बोलता है, फिर बोलचाल में हिंदी-उर्दू का भेद नहीं करता। डॉ.शर्मा का विचार है कि बहुत-सी भाषा संबंधी समस्याएँ ऐतिहासिक-सामाजिक भाषाविज्ञान से हल की जा सकती हैं। उन्होंने मार्क्सवाद को ऐतिहासिक-भाषाविज्ञान पर लागू किया। मार्क्सवाद के अनुसार, पुराने सामंती समाज का रूप पुराने कबीलों ने विकसित किया था। इसलिए गण-समाजों की भाषा में विभिन्नता होगी ही। फिर मार्क्सवाद के अनुसार सामाजिक विकास में केंद्रों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। जैसे पूँजीवाद के विकास में इंगलैंड की भूमिका, संस्कृतियों-भाषाओं के विकास में भारत के केंद्रों की भूमिका। इसलिए अपभ्रंश से आधुनिक भाषाओं के विकास का सिद्धांत गलत सिद्ध होता है। भाषाई-सम्पत्ति के हिसाब से भारत समृद्ध देश है, जनता का पूरा सामाजिक विकास इससे जाना जा सकता है।

28.6 'हिंदी जाति' की अवधारणा और हिंदी की जातीय परंपरा

डॉ.रामविलास शर्मा ने भाषा-संस्कृति, साहित्य-आलोचना-संस्कृति में आर्थिक आधार से ज्यादा सामाजिक आधार का महत्व स्वीकार किया है। इसी सामाजिक आधार के परिप्रेक्ष्य से वे 'हिंदी जाति' की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं। 'हिंदी जाति' की अवधारणा के 'बीज' उन्हें मार्क्सवादी सामाजिक चिंतन से प्राप्त हुए हैं।'मानव-सभ्यता का विकास' पुस्तक मे वे कहते हैं - 'पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के प्रतिष्ठित होने के पहले सौदागरी पूँजी द्वारा पुरानी व्यवस्था के अंदर ही पूँजीवादी संबंधों का निर्माण होता है। इन संबंधों का परिणाम ही जातीय गठन है।' (पृ.97) 'जाति' को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं - 'जाति वह मानव-समुदाय है जो व्यापार द्वारा पूँजीवादी संबंधों के प्रसार के साथ गठित होती है। सामाजिक विकासक्रम में मानव समाज पहले 'जन' या 'गण' के रूप में गठित होता है। सामूहिक श्रम और सामूहिक विवरण गण-समाज की विशेषता है और उसके सदस्य आपस में एक-दूसरे से रक्त-संबंध के आधार पर सम्बद्ध माने जाते हैं। इन गण-समाजों के टूटने पर लघु जातियाँ बनती हैं जिनमें उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है और नए श्रम विभाजन के आधार पर भारतीय वर्ण-व्यवस्था जैसी समाज-व्यवस्था का चलन होता है। पूँजीवादी युग में इन्हीं लघु जातियों से आधुनिक जातियों का निर्माण होता है। ' (भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ. 27) बहुत सतर्कता के साथ डॉ. शर्मा 'राष्ट्र', 'नेशन' और 'जाति' इन तीन शब्दों के बारीक भेद को स्पष्ट करते हैं -'मार्क्सवादी साहित्य में 'नेशन' शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है, उसके लिए 'हिंदी', 'बंगला' के परिचित पुराने शब्द 'जाति' का प्रयोग करना उचित है। 'राष्ट्र' शब्द से भूमि का भी बोध होता है जबकि 'नेशन' शब्द से केवल किसी भूखंड के निवासियों का बोध होता है।' (वही, पृ. 14) 'जातीयता' की सबसे बड़ी पहचान 'भाषा' से होती है जैसे 'हिंदी, बंगला, मराठी, तमिल आदि भाषाएँ बोलने वाले समुदायों को 'जाति' कहते हैं। प्रत्येक 'जाति' आधुनिक पूँजीवादी आर्थिक संबंधों के विकास का परिणाम है।' (परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 16) इसी तर्क से डॉ. शर्मा नस्ल या धर्म को 'जाति' का आधार स्वीकार नहीं करते। एक ही धर्म को मानने वालों में भाषा के आधार पर अलग-अलग जातियों का अस्तित्व होता है, जैसे तुर्क, अरब, ईरानी मुसलमान हैं उनकी भाषाएँ अलग-अलग हैं। उनकी जातीयता की पहचान उनकी भाषाओं से होती है।

जातीय भाषा के रूप में हिंदी के उदय-प्रसार की चर्चा करते हुए वे व्यापारिक पूँजीवाद के उदय पर ध्यान देते हैं। शेरशाह ने सड़कें-नहरें तैयार करवाईं। इनसे व्यापार में सुविधा मिली। देश में व्यापार की बड़ी-बड़ी मंडियाँ कायम हुईं, जनपदों का अलगाव दूर हुआ - आगरा, दिल्ली, बनारस, पटना में कौमी बाज़ार पनपे। व्यापार-विनिमय के लिए इन बाज़ारों में जो भाषा काम में आती थी वह थी - 'खड़ी बोली' या 'हिंदी'। अपभ्रंश को पीछे ठेलकर ब्रज-अवधी जैसी लोक-भाषाएँ आगे बढ़ीं। भक्ति-आंदोलन इन्हीं लोक-भाषाओं की शक्ति से फैला। अतः 'ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली आदि ने हिंदुस्तानी 'हिंदी' जाति के निर्माण में मदद की।' (भारत की भाषा समस्या, पृ. 87) फिर ध्यान में रखने की बात यह है

Scanned by CamScanner